

हिन्दी साहित्य: आलोचना रूप एवं समस्यायें

Manju Devi

Ph. D. University of Delhi, Delhi, India

प्रस्तावना

किसी वस्तु के यथार्थ रूप को जानने और समझने की जिज्ञासा और उसके लिए प्रयत्न मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसे देखने या समझने की दृष्टि को आलोचना, समालोचना अथवा समीक्षा कहते हैं। आलोचना या समालोचना का मूल अर्थ वस्तु का 'सम्यक निरीक्षण' करना है। "जगत के प्रति बौद्धिक और रागात्मक प्रतिक्रियायें ही उसका जीवन है।" अतः समीक्षा करना मानव की मूलभूत प्रवृत्ति है। लेकिन जीवन के व्यवहार की अपेक्षा साहित्य के क्षेत्र में इसका आगमन बहुत बाद में हुआ है। इसका कारण है कि "पहले सृजनात्मक साहित्य अस्तित्व में आता है, इसके बाद आलोचना की प्रेरणा अथवा आलोचना की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है।" चूँकि आलोचना का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ 'सम्यक निरीक्षण' है अतः प्रारम्भ में आलोचना किसी कृति के गुण-दोष निरूपण तक सीमित रही, किन्तु उसमें विविध-विधियों शैलियों तथा सम्प्रदायों के सम्मिश्रण से उसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है उसमें "किसी कृति की विशेषताओं पर विचार करना उसकी उपलब्धियों एवं अभावों का मूल्यांकन करना, सहृदयों के हृदयों पर उसकी प्रतिक्रिया का विश्लेषण करना आदि अनेक कार्य आलोचना के अन्तर्गत आते हैं।" अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' का हिन्दी रूपान्तर है 'आलोचना' जिसका अर्थ मूल्यांकन अथवा निर्णय करना होता है। "साहित्य के क्षेत्र में आलोचना का कार्य उसका मूल्यांकन या निर्णय करना है। अतः कृति के रचयिता के व्यक्तित्व के प्रकाश में जब आलोचक उपयुक्त व्याख्या विश्लेषण पूर्वक उस स्तर की अन्य कृतियों में उसके स्थान और महत्व का निर्धारण करता है तब पारिभाषिक शब्दावली में इसे 'आलोचना' की संज्ञा दी जाती है।" आलोचना के स्वरूप पर दृष्टि डालते हैं तो उसके दो तत्व सामने आते हैं—व्याख्या और निर्णय। ये दोनों तत्व विज्ञान तथा साहित्य दोनों की समान रूप से समीक्षा करते हैं। अतः प्रश्न उठता है कि आलोचना कला है या विज्ञान। विज्ञान की दृष्टि से आलोचना में जिन तत्वों का होना जरूरी है वे तत्व हैं—वस्तुनिष्ठ दृष्टि, व्यवस्थित तर्क सम्मत विवेचन, नियमों की स्थापना आदि। इन तत्वों का उपयोग साहित्य और विज्ञान दोनों में समान रूप से किया जाता है। वैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत लेखक को अपने पूर्वाग्रह से मुक्त तटस्थ होकर किसी कृति का मूल्यांकन करना चाहिए। तथ्यों की स्थापना के साथ ही उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि पाठक उससे रस ग्रहण कर सके। जिस प्रकार वैज्ञानिक व्याख्या विश्लेषण के बाद अपने मत की घोषणा करता है, उसी प्रकार आलोचक वर्ण्य विषय के अंत में अपना मत प्रस्तुत करता है इस प्रकार "तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण विश्लेषण कारण कार्य श्रृंखला के अनुसरण आदि आलोचना के तथ्य वैज्ञानिक पद्धति के अनुरूप है।" आलोचना के स्वरूप के अन्तर्गत किन तत्वों को समाविष्ट किया जाए इस संबंध में डॉ० मोहन लाल लिखते हैं कि

आलोचना के प्रमुख चार तत्व हैं

- 1 कृति की व्याख्या और विश्लेषण,
- 2 लेखक के मनस्य स्तरों का अन्वीक्षण,
- 3 भावाक के प्रभाव संवेदनों का आकलन,
- 4 कृति का मूल्यांकन।

यद्यपि साहित्य और आलोचना परस्पर आश्रित है तथापि उनकी अलग-अलग प्रतिभाएं हैं—काव्य की प्रतिभा कारयित्री होती है उसी तरह आलोचना की प्रतिभा भावयित्री मानी गयी हैं। अब प्रश्न उठता है कि आलोचना सर्जनात्मक साहित्य का अंग है या नहीं साहित्य और आलोचना अभिन्न रूप से संबद्ध हैं। जिस प्रकार आलोचना साहित्य पर आश्रित है उसी प्रकार साहित्य भी आलोचना से निर्देशित होता है हृदय को उद्धृत करते हुए भगवत स्वरूप मिश्र लिखते हैं कि "कविता जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है और समीक्षा काव्य से, यह भेद ही कृत्रिम है। सच्ची समीक्षा जीवन से ही प्रेरणा लेती है। समीक्षा साहित्य के अन्तःस्तल में प्रवाहित होकर ही प्रेरणा नहीं देती अपितु व्यक्त रूप में उसका स्वरूप निर्दिष्ट करती है।"

आलोचना का प्रमुख उद्देश्य साहित्य के मर्म का उद्घाटन करना है। वह अपने युग के अनुसार साहित्य मूल्यों का निर्माण करे और साहित्य का समुचित मार्ग दर्शन करे। कृति विशेष की सम्यक समीक्षा से सहृदय पाठक को रस ग्रहण में सुविधा होती है, साथ ही उसकी साहित्य के प्रति रुचि में भी वृद्धि होती है। आलोचक अपने उद्देश्य में तभी सफल हो सकेगा जब उसे आलोच्य विषय का पूर्ण ज्ञान हो। इसके अभाव में किसी भी आलोचक के लिए निष्पक्ष आलोचना करना संभव नहीं है। किन्तु "केवल विषय बोध ही पर्याप्त नहीं है। कृति के अध्ययनोपरान्त उससे प्रभाव ग्रहण की क्षमता भी आलोचक के लिए आवश्यक है।"

किसी भी कृति की समीक्षा उसके देश की सांस्कृतिक, सामाजिक विचारधारा की पृष्ठभूमि में की जानी चाहिए। "प्रत्येक देश की कुछ विचार विशेषताएँ होती हैं। उनको ध्यान में रखे बिना, उस देश के साहित्य, उस देश की कथा आदि के संबंध में यदि मत प्रदर्शन किया जाए तो वह एक अशुद्ध बात होगी। किसी देश के साहित्य की आलोचना उस देश के गुण विशेष की ओर दृग्पात किए बिना नहीं जा सकती।" काव्यालोचन में सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ ही देशकाल का ध्यान भी रखा जाना चाहिए। इसके अलावा प्रत्येक व्यक्ति की अलग अलग विचारधारायें होती हैं आलोचक को विचारधारा से मुक्त होकर तटस्थ भाव से कृति का मूल्यांकन करना चाहिए। जिस प्रकार समय-समय पर काव्य के क्षेत्र में विभिन्न प्रवृत्तियों का उदय होता है, उसी प्रकार दृष्टिकोण के आधार पर आलोचना को विभिन्न भागों में बांटा गया है—सैद्धांतिक आलोचना,

व्यवहारिक आलोचना। सैद्धांतिक आलोचना के द्वारा उच्च सामान्य, मूल्यों का निर्धारण तथा विभिन्न विधाओं के स्वरूप का विवेचन किया जाता है। सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत साहित्य के कविता, नाटक, निबंध आदि रूपों के सामान्य नियमों का निर्धारण किया जाता है।

व्यवहारिक आलोचना—आलोचना के सिद्धांतों का प्रयोगात्मक रूप है। "सैद्धांतिक आलोचना जहां काव्य के लक्षण ग्रन्थों तथा उसके निरीक्षण परीक्षण के सिद्धांतों की रचना करती है, वहीं व्यवहारिक आलोचना काव्य का प्रयोगात्मक अध्ययन करती है।"⁹ व्यवहारिक आलोचना के अनेक रूप हैं— प्रभावात्मक, निर्णयात्मक तथा व्याख्यात्मक आलोचना आदि। व्याख्यात्मक आलोचना के कई अन्य उपभेद किए जा सकते हैं। मनोवैज्ञानिक आलोचना, चरितमूलक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना तथा ऐतिहासिक आलोचना आदि। पुनः ऐतिहासिक आलोचना के दो भागों में विभक्त किया जा सकता है— मार्क्सवादी आलोचना तथा समाजशास्त्री आलोचना। इन आलोचना पद्धतियों के अलावा कुछ अन्य भेद— अभिव्यंजनावादी, सौष्ठववादी तथा कलावादी आलोचना को गौड़ पद्धतियों के रूप में जाना जाता है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि साहित्य का उचित मूल्यांकन आलोचना के बिना संभव नहीं है। किसी कृति की विशेषताओं का उद्घाटन करने के लिए समीक्षक अनेक आलोचना प्रवृत्तियों का प्रयोग करता है। जिस प्रकार कोई रचनाकार अपनी कृति में नवीन शैलियों का प्रयोग करता है। उसी प्रकार आलोचक मूल्यांकन के लिए नये मूल्यों की खोज करता है। दिनकर का हवाला देते हुए रामेश्वर लाल लिखते हैं कि "प्रत्येक नया कवि आलोचक से आलोचना की नई कसौटी की मांग करता है, क्योंकि आलोचक नये कवि को पुरानी कसौटी पर कसके उसके साथ—न्याय नहीं कर सकता। इसलिए जब भी कविता में नवीनता आती है तब आलोचना भी ईशत् नवीन हो जाती है।"¹⁰

आलोचकों ने समय—समय पर युग के नये संदर्भ से नई संवेदनशीलता को उजागर किया है और महत्वपूर्ण कृतियों के अनुद्घाटित मूल्यों तथा उनमें अन्तर्निहित सौन्दर्य की पहचान कराकर पाठकों के रुचि संस्कार को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सही मूल्यांकन के अभाव में कोई भी आलोचना पद्धति अपने आप को पूरे आत्मविश्वास के साथ स्थापित करने में सफल नहीं हो पाई है। एक शताब्दी के कार्यकाल में आलोचना ने जो सफलता अर्जित की है, यद्यपि वह संतोषजनक है, किन्तु समय—समय पर उसके विकास में जो गतिरोध आते रहे हैं, उन्होंने कालक्रम में समस्याओं का रूप धारण कर लिया है।

वैज्ञानिकता, आधुनिक औद्योगीकरण तथा पूंजीवादी बौद्धिक विचारधारा ने मनुष्य जीवन के विविध क्षेत्रों को इतना अधिक संघर्षमय और वैषम्यपूर्ण बना दिया है कि उसका प्रत्यक्ष प्रभाव साहित्य के अंग प्रत्यंग पर दिखाई पड़ता है। अद्यतन जीवन की इन्हीं जटिलताओं और संघर्ष विषमताओं ने रचनात्मक साहित्य के साथ—साथ आलोचना साहित्य को भी उनके बाह्य तथा आन्तरिक विधान में इस प्रकार प्रभावित कर रखा है, जिसके कारण साहित्य समीक्षण के क्षेत्र में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं।

आज के साहित्यालोचन की प्रमुख समस्या भाषाई वाग्जाल है। इस सम्बन्ध में अपूर्वानन्द ने लिखा है कि "आलोचनात्मक लेखन में दो तरह के भाषाई व्यवहार दिखाई पड़ते हैं, एक जगह उग्र 'राजनीतिक' तेवरों का प्रदर्शन मिलता है तो दूसरी जगह जटिल वितान रचना का खेल है। गौर से देखे तो दोनों जगहों पर वाग्जाल का ही प्रदर्शन है एक अगर सामाजिक राजनीतिक उद्देश्यों के लिये अपनी प्रतिबद्धता की आड़ में घिसे—पिटे पदों मुहावरों से काम चलाता है तो रचना की "कलात्मकता" के अनुसन्धान का आभास देता हुआ ऐसी शब्दावली का प्रयोग करता

है जो कुछ भी 'बताने' के दायित्व से स्वयं को मुक्त कर चुकी है।"¹¹ भाषा किस प्रकार विचारों को बांध कर रखती है इस पर सटीक टिप्पणी करते हुए मुक्तिबोध लिखते हैं "समीक्षा के श्रेत्र में ऐसे भयानक विभ्रत तब होते हैं, जब समीक्षक साहित्य सृजन की मूलाधार मानव भूमि से संबंध त्याग करके, अपने आप में स्वयं पूर्ण—सम्पूर्ण बनकर उपस्थित होता है, तथा पाण्डित्य का पाण्डित्य और चिंतन की चतुरता बताते हुए सैद्धांतिक शब्दावली में अपने आप को स्थापित करने का प्रयत्न करने लगता है।"¹² आलोचना के क्षेत्र में पत्रकारिता और व्यवसायिकता की घुसपैठ ने इसके विकास में कम बाधाएं उत्पन्न नहीं की हैं। इस संबंध में सुबोध शुक्ल लिखते हैं कि "आज भी आलोचना एक मध्यस्थ की भूमिका में ही अधिक है। इसकी बड़ी वजह है आलोचना के चरित्र का व्यापारिक होते जाना, अधिक से अधिक कृति केन्द्रित बनते जाना। मेरा मानना है कि एक जागरूक आलोचना अपने साहित्येतर मूल्य बोधों और कलावर्गों को, रचानान्तर्गत एक वैकल्पिक जरूरत के रूप में रेखांकित करती है।"¹³ समीक्षा की व्यावसायिकता के कारण ही हिन्दी पत्र—पत्रिकाओं में किसी विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति को प्रमोट करने का अभियान सा दिखाई पड़ता है और ऐसा करके वह न सिर्फ अपने आप को छलता है बल्कि पाठक को गुमराह भी करता है।

अपनी स्वतंत्र भूमिका न पहचानने के कारण आलोचना यांत्रिक विभाजन तथा अगतिकता का शिकार हो जाती है। उसमें मानसिक तत्परता की कमी भी देखी जाती है। मुक्तिबोध को आलोचकों से यह शिकायत है कि वे पहले से बनी अवधारणात्मक कोटियों विवेचन मात्र को ही अपना आधार न बनाये। वे लिखते हैं "प्रत्येक कलाकृति के भीतर भाव समुदाय के अपने विशेष संदर्भ होते हैं, उन संदर्भों को जब तक ठीक—ठीक नहीं समझा जाता, तब तक कलाकृति का भावार्थ नहीं समझ सकते।"¹⁴ आलोचकों को चाहिए कि वह कलाकृति के भीतर के तत्वों को भलीभांति समझे और फिर उसका विश्लेषण करें। वे आगे लिखते हैं कि "क्या यह दुहराया जाए कि समीक्षक का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह किसी भी कलाकृति के अन्तर्तत्वों को—उसके प्राण तत्वों को—भावना कल्पना को हृदयंगम करें, और एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित अन्तर्धारा की गति को और उसकी अन्तिम परिणित को, सहानुभूति पूर्वक अच्छी तरह समझे और तदुपरान्त उसका विलेषण करें। किसी भी कलाकृति के भीतर जो गतिमान तत्व होते हैं, उनके अर्थ व्यापक होते हैं। अतएवं उन तत्वों के अन्तःसंबंधों, उन अन्तः संबंधों के समुच्चय की विशेष गठन कम महत्वपूर्ण नहीं होती।"¹⁵ इसके लिए आलोचक को प्रबुद्ध आलोचनात्मक तथा बहुआयामी व्यक्तित्व सम्पन्न होना चाहिए जिससे वह कृति का समग्र और प्रभावशाली मूल्यांकन कर सके।

आलोचना की समूची प्रक्रिया रचना के बहिस्तर संबंधों और क्रिया प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण मूल्यांकन करना है। मुक्तिबोध का मानना है कि इसके लिए आत्म निरपेक्षता, सर्तकता और सजग दृष्टि होनी चाहिए। आलोचक को समीक्षा कर्म में पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर नहीं तथस्त होकर प्रवृत्त होना चाहिए। वे लिखते हैं "यथार्थ के व्यक्त रूपों की, अर्थात्, तथ्यों की, अगर आपने गलत तस्वीर खड़ी की अपने पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर, स्वयं आत्मग्रस्त होकर—तो ऐसी स्थिति में आपकी जाग्रत दृष्टि आपके पूर्वाग्रहों के रंग में रंग जायेगी। इसका परिणाम यह होगा कि तथ्यों के केवल एक पक्ष या अंग को ही देख सकेंगे, विभिन्न पक्षों को नहीं देख सकेंगे, समग्र को नहीं देख पायेंगे और अपने देखे हुए उस एक अंग को ही समग्र समझने लगेंगे।"¹⁶ इस समस्या के परिणाम स्वरूप मूल्यांकन में एकांगिकता आ जायेगी, जिससे आलोचना विकृत हो उठेगी।

समीक्षा की सबसे बड़ी समस्या समीक्षक की विवेकशील सहानुभूति और प्रेम है। वह लेखक के प्रति शत्रुता का व्यवहार न

करे क्योंकि यदि वह लेखक को अपना ग्रास बनाता है तो वह समीक्षक अपने समीक्षा कर्म से च्युत हो जाता है। मुक्तिबोध कहते हैं कि "जिस लेखक को यदि समीक्षक अपना, अपने आक्रमणों का लक्ष्य बनाता है तो भले ही उसके आक्रमण सफल हों, वह समीक्षक अपने लक्ष्य से च्युत हो गया है, सह संदेह के परे है।" 17 आज की आलोचना की प्रमुख समस्या अनेक वादों का चलन है जिससे विभिन्न वर्गीय आलोचक अपनी-अपनी वाद प्रणाली को पूर्ण तथा निरपेक्ष मानने लगते हैं और एक दूसरे का विरोध करने लगते हैं। किंतु यह विरोध तटस्थ भाव से किया जाना चाहिए। मुक्तिबोध हैं कि "प्रतिपक्ष के प्रति भी पूरी ईमानदारी बरती जाए। ईमानदारी का अर्थ है, आत्मपरक और वस्तुपरक खरी-खरी और खड़ी-खड़ी बात, जो एकदम वास्तवधारित हो वास्तव का उद्घाटन कर दे।" 18 लेखक के मनोजगत को समझकर समीक्षक को उसकी रचना का मूल्यांकन करना चाहिए। आज के तकनीकी युग में मनुष्य का जीवन जितना अधिक विकसित हुआ है उतना ही अधिक उसका जीवन चरित्र उलझता चला जाता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि नूतन प्रणाली के कठिन श्रम से भागकर पुरानी और सरल प्रणाली अपना ली जाए। यथार्थपरक जीवन्त संवेदना आलोचना को प्रामाणिक बनाती है, उसके सैद्धांतिक वैचारिक आग्रह नहीं। अपूर्वानन्द मुक्तिबोध को उद्घृत करते हुए कहते हैं "वास्तविक जीवन की संवेदनात्मक समीक्षा शक्ति के अभाव में, साहित्य के क्षेत्र में समीक्षा शक्ति थोड़ी होती है। इसीलिए समीक्षक का आदि कर्तव्य वास्तविक जीवन की संवेदनात्मक जीवन की, समीक्षा शक्ति का विकास करना है।" 19

वे आगे लिखते हैं "जब तक वास्तविक जीवन की संवेदना ज्ञानात्मक और ज्ञान संवेदनात्मक समीक्षा शक्ति लेखक और समीक्षक दोनों में विकसित और सम्पन्न नहीं होती, तब तक हमारे सारे प्रयत्न अधूरे ठहरते हैं।" 20 अतः एक समीक्षक के लिए आवश्यक है कि वह रचनाकार की उस सायकॉलॉजिकल सिचिएशन को भली-भांति समझे जो उसके साहित्य सृजन का प्रारम्भिक बिन्दु है। उग्र सिद्धान्तवादी तथा अहमन्यता भी समीक्षा के लिए कम खतरनाक तत्व नहीं है। अपने आग्रही मत की स्थापना के लिए समीक्षक आवश्यक तर्क और उदाहरण प्रस्तुत कर जो मूल्यांकन करता है निसन्देह वह निन्दा का पात्र बनता है मुक्तिबोध लिखते हैं कि "केवल आस्थावादी शब्दों के उच्चार और पुनरुच्चार से मानव आस्था का वातावरण उत्पन्न नहीं होगा, जब तक समीक्षक स्वयं अपनी कठोर और कोमल दृष्टि के द्वारा अपने समीक्षात्मक आचरण और व्यवहार द्वारा यह सिद्ध नहीं करता कि वह उग्र सिद्धान्तवादी अहंकार से पीड़ित नहीं वरन् लक्ष्योन्मुख उदार मानव प्रेरणाओं से उत्स्फूर्त है।" 21

आज के युग में स्वार्थीपन और अर्थलोलुपता ने भी समीक्षा के स्तर को निम्न बनाया है। इसके लिए समीक्षक ही नहीं, लेखक और प्रकाशक भी बराबर के जिम्मेदार हैं। मुक्तिबोध कहते हैं कि "क्या साहित्य सृजन के लिए प्रतिकूल परिस्थिति केवल समीक्षकों द्वारा ही उत्पन्न की जाती है? निसन्देह नहीं, नहीं ही। लेखक अपनी अर्थहीन रचनाओं द्वारा, और प्रकाशक अपनी अर्थलोलुप प्रवृत्ति द्वारा, तथा पाठक अपने पिछड़ेपन के द्वारा भी, साहित्य सृजन के लिए प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर देते हैं।" 22

घटिया स्तर के राजनीतिकरण ने भी आलोचना को अत्यधिक प्रभावित किया है। दरअसल यह एक विशेष राजनीतिक आग्रह का पोषण कर रही है। आलोचना अगर राजनीतिक भीरुता का शिकार है तो वह नैतिकता का उद्घाटन नहीं कर पायेगी और इस प्रकार उसमें नैतिकता और ईमानदारी का ढोंग दिखाई पड़ता है। डा. वेंकट शर्मा कहते हैं "विश्व के विभिन्न देशों में आज प्रायः ऐसा देखा जाता है कि साहित्य की सार्वभौम सत्ता राजनीतिक दलबन्धियों में ग्रस्त होकर अपने वैशिष्ट्य को खण्ड-खण्ड कर रही है। और जीवन की संवेदना तथा रसानुभूति

जीर्ण-शीर्ण होकर अत्यल्पजीवी राजनीतिक प्रवादों के सम्मुख आत्म समर्पण करने के लिए विविध बनाई जा रही है।" 23 समाज में फैली विसंगतियों और विडम्बनाओं के कारण आलोचना की समस्याएँ बढ़ती ही जा रही हैं। आज की आलोचना की प्रमुख समस्या विश्वसनीयता है। महेश चन्द्र पुनेठा लिखते हैं "अध्यापकीय आलोचना जो अकेडमी बोझ से दबी है, जिसकी भाषा आम पाठक के पल्ले नहीं पड़ती है जो रचना को खोलने के बजाय अधिक उलझा देती है, जिसमें पंडितरूपन भी है और ऊबाउपन भी इसके अलावा खेमेबाजी, एकतरफा आलोचना, आलोचकों का अपने कर्म के प्रति गम्भीर न होना आदि ऐसे कारण हैं, जिसके चलते आज की आलोचना अपनी विश्वसनीयता खोती जा रही है। आलोचना की साख धीरे-धीरे घट रही है।" 24 कहने का तात्पर्य इतना है कि आज आलोचना विभिन्न समस्याओं में जकड़ती जा रही है। इसी कारण हिन्दी आलोचन के अपने जातीय मूल्य और विरासत के उपकरण आज धूमिल पड़ गये हैं। हिन्दी आलोचना आज भी तमाम प्रयासों के बावजूद प्रतीकीकरण की आस्था में ही जी रही है, मात्र वयानों और गतिविधियों की आवाजाही को ही दर्ज कर रही है, लोक, संस्कृति और समस्याओं के व्यापक दायरे में उसके निष्कर्ष की पड़ताल आज भी की जानी बाकी है। क्योंकि आलोचना की समस्याएँ कहीं न कहीं जीवन के वजूद और उसकी हैसियत को आज भी झिझोड़ते हैं।

संदर्भ सूची

1. भगवत स्वरूप मिश्र, हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास, 1954, साहित्य सदन देहरादून, प्रकाशन, पृ. 1
2. प्रोफेसर रामेस्वरलाल खण्डेलवाल, हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ, 1966 राधाकृष्ण, प्रकाशन दिल्ली-6 पृ. 13
3. वही, पृ. 13
4. वही, पृ. 13
5. वही, पृ. 21
6. भगवत स्वरूप मिश्र - हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास, पृ. 7
7. प्रो. रामेस्वरलाल खण्डेलवाल - हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ, पृ. 16
8. वही, पृ. 17
9. मेहनलाल एवं सुरेशचन्द्र गुप्त - प्रतिनिधि आलोचक, 1956, प्रकाशन भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, पृ. 8
10. वही, पृ. 8
11. प्रो. रामेस्वरलाल खण्डेलवाल, हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ, पृ. 32
12. नन्दकिशोर नवल - आलोचना का दायित्व कुछ विचार - कसौटी, अंक-7 प्रकाशन-चिड़िया चुनश्च पटना- पृ. 42
13. गजानन माधव मुक्तिबोध, समीक्षा की समस्याएँ, प्रथम संस्करण 1982 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 20-21
14. सुबोध शुक्ल, रचना और आलोचना का सवाल,
15. मुक्तिबोध, समीक्षा की समस्याएँ, पृ. 17-18
16. वही, पृ. 19, 17. -वही, पृ. 16
17. वही, पृ. 20, 19.- वही, पृ. 28
18. नंदकिशोर नवल, कसौटी, अंक-7, पृ. 47
19. मुक्तिबोध, समीक्षा की समस्याएँ, पृ. 37
20. वही- पृ. 37
21. डॉ. वेंकट शर्मा, आधुनिक साहित्य में समालोचना का विकास, प्रथम संस्करण-1962, आत्माराम एण्ड संस, पृ. 466
22. रामविलास शर्मा विशेषांक, समकालीन चुनौती संयुक्तांक 5-7, त्रैमासिक पत्रिका अक्टूबर 2011, जून 2012, पृ. 75